मनः प्रीतिकरः स्वर्गो नरकस्तद्विपर्ययः । नरकस्वर्गसंज्ञे वै पापपुण्ये द्विजोत्तम ॥४६॥
वस्त्वेकमेव दुःखाय सुखायेर्ष्यागमाय च । कोपाय च यतस्तस्माद्वस्तु वस्त्वात्मकं कुतः ॥४७॥
तदेव प्रीतये भूत्वा पुनर्दुःखाय जायते। तदेव कोपाय यतः प्रसादाय च जायते ॥४८॥
तस्माद्दुःखात्मकं नास्ति न च किञ्चित्सुखात्मकम् । मनसः परिणामोऽयं सुखदुःखादिलक्षणः ॥४९॥
ज्ञानमेव परं ब्रह्म ज्ञानं बन्धाय चेष्यते। ज्ञानात्मकमिदं विश्वं न ज्ञानाद्विद्यते परम्॥५०॥
विद्याविद्येति मैत्रेय ज्ञानमेवोपधारय ॥५१॥
एवमेतन्मयाख्यातं भवतो मण्डलं भुवः । पातालानि च सर्वाणि तथैव नरका द्विज॥५२॥
समुद्राः पर्वताश्चैव द्वीपा वर्षाणि निम्नगाः । संक्षेपात्सर्वमाख्यातं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥५३॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे द्वितीयेंऽशे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सातवाँ अध्याय

श्रीमैत्रेय उवाच

कथितं भूतलं ब्रह्मन्ममैतदखिलं त्वया। भुवर्लोकादिकाँल्लोकाञ्छ्रोतुमिच्छाम्यहं मुने ॥१॥
तथैव ग्रहसंस्थानं प्रमाणानि यथा तथा। समाचक्ष्व महाभाग तन्मह्यं परिपृच्छते॥२॥

कहाँ मुक्ति प्राप्ति के बीज स्वरूप भगवान् वासुदेव के नाम का स्मरण ! दोनों में कोई समता नहीं है ॥४४॥ अतएव हे मुने ! निरन्तर भगवान् विष्णु का स्मरण करने वाला पुरुष सभी पापों के विनष्ट हो जाने के कारण कभी भी नरक में नहीं जाता है ॥४५॥ हे द्विजोत्तम ! मन को अच्छा लगने वाला स्वर्ग है, नरक ठीक उसके विपरीत है, वही नरक है । अतएव पुण्य और पाप का ही दूसरा नाम स्वर्ग एवं नरक है ॥४६॥ जब एक ही वस्तु सुख, दुःख, ईर्ष्या तथा कोप का कारण है; तो फिर उस वस्तु में वस्तुत्व कहाँ रह गया ?॥४७॥ एक ही वस्तु सुखप्रद होकर पुनः दुःखप्रद हो जाती है और वह कोप तथा प्रसन्नता का कारण चूकि बन जाती है, अतएव कोई भी वस्तु न तो सुखात्मक है और न तो दुःखात्मक । सुख तथा दुःख तो मन के परिणाम हैं ॥४८-४९॥ ज्ञान ही ब्रह्म है, ज्ञान ही संसार के बन्धन का कारण है, यह सम्पूर्ण जगत् ज्ञानात्मक है, ज्ञान से भिन्न कुछ नहीं है ॥५०॥ हे मैत्रेय ! विद्या तथा अविद्या को भी ज्ञान ही समझो ॥५१॥ हे द्विज मैंने इस तरह तुम्हें सम्पूर्ण भूमण्डल, सभी पाताल तथा नरकों का वर्णन सुनाया॥५२॥ समुद्रों, पर्वतों, द्वीपों, वर्षों, नदियों का भी संक्षेप में वर्णन किया अब क्या सुनना चाहते हो ?॥५३॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के दूसरे अंश के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६॥

भूर्भुवः आदि ऊपर के लोकों का वर्णन

श्रीमैत्रेय महर्षि ने कहा— हे ब्रह्मन् ! आपने सम्पूर्ण पृथिवी का वर्णन किया अब मैं भुवर्लोक आदि का वर्णन सुनना चाहता हूँ ॥१॥ ग्रहों के संस्थान तथा उनके प्रमाण जैसे हैं उन सबों के विषय में मैं पूछ रहा हूँ उसे आप सुनायें ॥२॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** सूर्य, चन्द्रमा की किरणों से जितनी दूर तक समुद्र, नदी तथा

श्रीपराशर उवाच

रविचन्द्रमसोर्यावन्मयूखैरवभास्यते । ससमुद्रसरिच्छैला तावती पृथिवी स्मृता ॥३॥
यावत्प्रमाणा पृथिवी विस्तारपरिमण्डलात् । नभस्तावत्प्रमाणं वै व्यासमण्डलतो द्विज ॥४॥
भूमेर्योजनलक्षे तु सौरं मैत्रेय मण्डलम् । लक्षाद्दिवाकरस्यापि मण्डलं शशिनः स्थितम् ॥५॥
पूर्णे शतसहस्रे तु योजनानां निशाकरात् । नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्टात्प्रकाशते ॥६॥
द्वे लक्षे चोत्तरे ब्रह्मन् बुधो नक्षत्रमण्डलात् । तावत्प्रमाणभोगे तु बुधस्याप्युशनाः स्थितः ॥७॥
अङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तत्प्रमाणे व्यवस्थितः । लक्षद्वये तु भौमस्य स्थितो देवपुरोहितः ॥८॥
शौरिर्बृहस्पतेश्चोर्ध्वं द्विलक्षे समवस्थितः । सप्तर्षिमण्डलं तस्माल्लक्षमेकं द्विजोत्तम ॥९॥
ऋषिभ्यस्तु सहस्राणां शतादूर्ध्वं व्यवस्थितः । मेढीभूतः समस्तस्य ज्योतिश्चक्रस्य वै ध्रुवः ॥१०॥
त्रैलोक्यमेतत्कथितमुत्सेधेन महामुने । इज्याफलस्य भूरेषा इज्या चात्र प्रतिष्ठिता ॥११॥
ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोको यत्र ते कल्पवासिनः । एकयोजनकोटिस्तु यत्र ते कल्पवासिनः ॥१२॥
द्वे कोटी तु जनो लोको यत्र ते ब्रह्मणः सुताः । सनन्दनाद्याः प्रथिता मैत्रेयामलचेतसः ॥१३॥
चतुर्गुणोत्तरे चोर्ध्वं जनलोकात्तपः स्थितम् । वैराजा यत्र ते देवाः स्थिता दाहविवर्जिताः ॥१४॥
षड्गुणेन तपोलोकात्सत्यलोको विराजते । अपुनर्मारका यत्र ब्रह्मलोको हि स स्मृतः ॥१५॥
पादगम्यन्तु यत्किञ्चिद्वस्त्वस्ति पृथिवीमयम् । स भूर्लोकः समाख्यातो विस्तरोऽस्य मयोदितः ॥१६॥
भूमिसूर्यान्तरं यच्च सिद्धादिमुनिसेवितम् । भुवर्लोकस्तु सोऽप्युक्तो द्वितीयो मुनिसत्तम ॥१७॥
ध्रुवसूर्यान्तरं यच्च नियुतानि चतुर्दश । स्वर्लोकः सोऽपि गदितो लोकसंस्थानचिन्तकैः ॥१८॥

पर्वत प्रकाशित होते हैं, उतनी दूर तक पृथिवी कहलाती है ॥३॥ हे द्विज ! पृथिवी का जितना विस्तार और परिमण्डल (घेरा) है उतना ही विस्तार और परिमण्डल भुवर्लोक का है ॥४॥ हे मैत्रेय ! भूमि से एक लाख योजन ऊपर सौर मण्डल है । सूर्य से एक लाख योजन ऊपर चन्द्रमण्डल है ॥५॥ चन्द्रमण्डल से पूरे सौ हजार योजन ऊपर सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल है ॥६॥ हे ब्रह्मन् ! नक्षत्र मण्डल से दो लाख योजन ऊपर बुध हैं । बुध से दो लाख योजन ऊपर शुक्र हैं ॥७॥ शुक्र से दो लाख योजन ऊपर मङ्गल हैं । मङ्गल से दो लाख योजन ऊपर बृहस्पति (देवपुरोहित) हैं ॥८॥ बृहस्पति से दो लाख योजन ऊपर शनि हैं । हे द्विजोत्तम ! शनि से एक लाख योजन ऊपर सप्तर्षि मण्डल है ॥९॥ सप्तर्षियों से एक लाख योजन ऊपर सम्पूर्ण ज्योतिश्चक्र के नभिरूप ध्रुव मण्डल है ॥१०॥ हे महामुने ! यह मैंने त्रैलोक्य की ऊँचाई का वर्णन किया, यह त्रैलोक्य यज्ञ के फल की कर्मभूमि है, यहाँ पर यज्ञ प्रतिष्ठित है ॥११॥ ध्रुव के एक करोड़ योजन ऊपर महर्लोक है, जहाँ पर कल्प पर्यन्त रहने वाले भृगु आदि सिद्धगण रहा करते हैं ॥१२॥ हे मैत्रेय ! उससे भी दो करोड़ योजन ऊपर जनलोक है, जहाँ ब्रह्माजी के निर्मल अन्तःकरण वाले पुत्र सनन्दन आदि रहते हैं ॥१३॥ जनलोक से चार गुना (आठ करोड़ योजन) ऊपर तपोलोक है, वहाँ दाह से रहित वैराज संज्ञक देवगण रहा करते हैं ॥१४॥ तपोलोक से छह गुना (बारह करोड़ योजन) ऊपर सत्यलोक है । जहाँ पर नहीं मरने वाले अमरगण निवास करते हैं, उसे ही ब्रह्मलोक कहते हैं ॥१५॥ जो भी पार्थिव पदार्थ पैरों से चलने योग्य हैं, उसे ही भूर्लोक कहा गया है, इसका विस्तार मैंने तुम्हें बतला दिया है ॥१६॥ भूमि और सूर्य के बीच में जो सिद्धों तथा मुनियों से सेवित अन्तराल है वह द्वितीय भुवर्लोक है ॥१७॥ ध्रुव तथा सूर्य के बीच में जो चौदह लाख योजन का अन्तराल है, उसको लोकों के संस्थान का चिन्तन करने वाले मनीषियों ने

त्रैलोक्यमेतत्कृतकं मैत्रेय परिपठ्यते। जनस्तपस्तथा सत्यमिति चाकृतकं त्रयम्॥१९॥
कृतकाकृतयोर्मध्ये महर्लोक इति स्मृतः। शून्यो भवति कल्पान्ते योऽत्यन्तं न विनश्यति॥२०॥
एते सप्त मया लोका मैत्रेय कथतास्तव। पातालानि च सप्तैव ब्रह्माण्डस्यैष विस्तरः॥२१॥
एतदण्डकाटाहेन तिर्यक् चोर्ध्वमधस्तथा। कपित्थस्य यथा बीजं सर्वतो वै समावृतम्॥२२॥
दशोत्तरेण पयसा मैत्रेयाण्डं च तद्वृतम्। सर्वोऽम्बुपरिधानोऽसौ वह्निना वेष्टितो बहिः॥२३॥
वह्निश्च वायुना वायुर्मैत्रेय नभसा वृतः। भूतादिना नभः सोऽपि महता परिवेष्टितः।
दशोत्तराण्यशेषाणि मैत्रेयैतानि सप्त वै ॥२४॥
महान्तं च समावृत्य प्रधानं समवस्थितम्। अनन्तस्य न तस्यान्तः संख्यानं चापि विद्यते॥२५॥
तदनन्तमसंख्यातप्रमाणं चापि वै यतः। हेतुभूतमशेषस्य प्रकृतिः सा परा मुने॥२६॥
अण्डानां तु सहस्राणां सहस्रण्ययुतानि च। ईदृशानां तथा तत्र कोटिकोटिशतानि च॥२७॥
दारुण्यग्निर्यथा तैलं तिले तद्वत्पुमानपि। प्रधानेऽवस्थितो व्यापी चेतनात्मात्मवेदनः॥२८॥
प्रधानं च पुमांश्चैव सर्वभूतात्मभूतया। विष्णुशक्त्या महाबुद्धे वृतौ संश्रयधर्मिणौ॥२९॥
तयोः सैव पृथग्भावकारणं संश्रयस्य च। क्षोभकारणभूता च सर्गकाले महामते॥३०॥
यथा सक्तं जले वातो बिभर्ति कणिकाशतम्। शक्तिः सापि तथा विष्णोः प्रधानपुरुषात्मकम्॥३१॥
यथा च पादपो मूलस्कन्धशाखादिसंयुतः। आदिबीजात्प्रभवति बीजान्यन्यानि वै ततः॥३२॥
प्रभवन्ति ततस्तेभ्यः सम्भवन्त्यपरे द्रुमाः। तेऽपि तल्लक्षणद्रव्यकारणानुगता मुने॥३३॥

स्वर्लोक कहा है ॥१८॥ ये तीनों (भूः, भुवः एवं स्वः) त्रैलोक्य हैं। उसे कृतक कहते हैं। जन, तप एवं सत्य ये तीन लोक अकृतक हैं ॥१९॥ कृतक एवं अकृतक के बीच में महर्लोक है। वह कल्प के अन्त में जीवों से रहित हो जाता है, उसका आत्यन्तिक विनाश नहीं होता है ॥२०॥ हे मैत्रेय! मैंने इन सात लोकों तथा सात पातालों का वर्णन किया है। इतना ही ब्रह्माण्ड का विस्तार है ॥२१॥ यह ब्रह्माण्ड ऊपर नीचे तथा सब ओर कपित्थ (कैंथ) के बीज के समान चारो ओर से अण्डकटाह से घिरा है ॥२२॥ हे मैत्रेय! ब्रह्माण्ड भी अपने दश गुने जल से घिरा है। वह जल का घेरा भी अग्नि के घेरे से बाहर से वेष्टित है ॥२३॥ हे मैत्रेय! अग्नि वायु से घिरा है और वायु आकाश से घिरा है। वह आकाश भी भूतादि (तामस) अहङ्कार से वेष्टित है, और भूतादि महत् तत्त्व से घिरा है। हे मैत्रेय! ये सातो आवरण उत्तरोत्तर पूर्वपूर्वापेक्षया दश-दश गुना अधिक हैं ॥२४॥ उस महत् तत्त्व को भी प्रधान (प्रकृति) ने घेर रखा है। वह प्रधान अनन्त है, उसका अन्त और संख्या नहीं है ॥२५॥ वह प्रधान ही अनन्त, असंख्य और अप्रमेय है। वह सबों का कारण है। वही परा प्रकृति है ॥२६॥ इस प्रधान में ऐसे, हजारों लाखों तथा करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं ॥२७॥ जिस तरह काष्ठ में अग्नि होती है, तिल में तेल होता है, उसी तरह स्वयम्प्रकाश, व्यापक, तथा चेतन पुरुष भी प्रधान में स्थित है ॥२८॥ हे महाबुद्धिमान् मैत्रेय! संश्रयधर्मी प्रधान और पुरुष भी सभी भूतों की आत्मा स्वरूप विष्णु शक्ति के द्वारा आवृत हैं ॥२९॥ हे महामत्ते! वह विष्णु शक्ति ही प्रधान तथा पुरुष के प्रलय काल में पृथक् होने, स्थिति काल में मिलने तथा सृष्टि काल में क्षुब्ध होने का कारण है ॥३०॥ जिस तरह से जल के संसर्ग से वायु जल के सहस्रों कणों को धारण करता है, उसी तरह विष्णु की शक्ति भी प्रधान पुरुष और पुरुष मय जगत् को धारण करती है ॥३१॥ हे मुने! जिस तरह आदि बीज से मूल, स्कन्ध तथा शाखा आदि से युक्त वृक्ष उत्पन्न होता है, और उससे दूसरे बीज उत्पन्न होते हैं, उसके बाद उन सबों से दूसरे वृक्ष उत्पन्न होते हैं, और

एवमव्याकृतात्पूर्वं जायन्ते महदादयः । विशेषान्तास्ततस्तेभ्यः सम्भवन्त्यसुरादयः ।
तेभ्यश्च पुत्रास्तेषां च पुत्राणामपरे सुताः ॥३४॥
बीजाद्वृक्षप्ररोहेण यथा नापचयस्तरोः । भूतानां भूतसर्गेण नैवास्त्यपचयस्तथा ॥३५॥
सन्निधानाद्यथाकाशकालाद्याः कारणं तरोः । तथैवापरिणामेन विश्वस्य भगवान्हरिः ॥३६॥
व्रीहिबीजे यथा मूलं नालं पुत्राङ्कुरौ तथा । काण्डं कोषस्तु पुष्पं च क्षीरं तद्वच्च तण्डुलाः ॥३७॥
तुषाः कणाश्च सन्तो वै यान्त्याविर्भावमात्मनः । प्ररोहहेतुसामग्रीमासाद्य मुनिसत्तम ॥३८॥
तथा कर्मस्वनेकेषु देवाद्याः समवस्थिताः । विष्णुशक्तिं समासाद्य प्ररोहमुपयान्ति वै ॥३९॥
स च विष्णुः परं ब्रह्म यतः सर्वमिदं जगत् । जगच्च यो यत्र चेदं यस्मिंश्च लयमेष्यति ॥४०॥
तद्ब्रह्म तत्परं धाम सदसत्परमं पदम् । यस्य सर्वमभेदेन यतश्चैतच्चराचरम् ॥४१॥
स एव मूलप्रकृतिर्व्यक्तरूपी जगच्च सः । तस्मिन्नेव लयं सर्वं याति तत्र च तिष्ठति ॥४२॥

कर्ता क्रियाणां स च इज्यते क्रतुः ए एव तत्कर्मफलं च तस्य ।
स्रुगादि यत्साधनमप्यशेषं हरेर्न किञ्चिद्व्यतिरिक्तमस्ति ॥४३॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे द्वितीयेंऽशे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

वे भी उन्हीं लक्षण, द्रव्य तथा कारण से युक्त होते हैं ॥३२-३३॥ उसी तरह अव्याकृत (प्रकृति) से महत् तत्त्व आदि से लेकर पञ्च महाभूत पर्यन्त विकार उत्पन्न होते हैं फिर उन सबों से असुर आदि उत्पन्न होते हैं । उन सबों से उनके पुत्र और उन पुत्रों के भी पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥३४॥ जिस तरह से बीज से वृक्ष के उत्पन्न होने से वृक्ष का कोई ह्रास नहीं होता है, उसी तरह जीवों से जीवों की सृष्टि के द्वारा उनका कोई ह्रास नहीं होता है ॥३५॥ जिस तरह काल तथा आकाश अपने सन्निधान मात्र से वृक्ष के कारण होते हैं, उसी तरह परिमाण रहित श्रीहरि विश्व के कारण हैं ॥३६॥ जिस तरह धान के बीज में उसका मूल नाल, पत्ते, अङ्कुर, काण्ड, कोष, पुष्प, दूध, चावल, तुष, तथा कण विद्यमान रहते हैं और अपने प्ररोह की सामग्री जल और मिट्टी के संयोग को प्राप्त करके आर्विर्भूत हो जाते हैं, उसी तरह हे मुनिश्रेष्ठ ! अनेक प्रकार के कर्मों में देवता आदि शरीर अवस्थित रहते हैं, और वे विष्णु शक्ति को प्राप्त करके आविर्भूत हो जाते हैं ॥३७-३९॥ वे भगवान् विष्णु ही परंब्रह्म हैं, उन्हीं से सारा जगत् उत्पन्न होता है, जो सम्पूर्ण जगत् स्वरूप हैं, जिनमें यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है और प्रलय काल में जिनमें यह लीन हो जायेगा॥४०॥ वे ही परंब्रह्म हैं, वे परं धाम हैं, वे ही चेतन तथा अचेतन स्वरूप परम प्राप्य हैं जो सबों से अभिन्न हैं तथा जिनसे यह सम्पूर्ण जडजङ्गमात्मक जगत् हुआ है ॥४१॥ वे ही मूल प्रकृति हैं, तथा व्यक्त स्वरूप जगत् भी वे ही है । प्रलय काल में जगत् उन्हीं में लीन हो जाता है और उन्हीं में स्थित रहता है ॥४२॥ वे ही क्रियाओं को करने वाले, तथा क्रियाओं से वे ही पूजित होते हैं तथा क्रतु स्वरूप भी वे ही है, वे ही कर्म स्वरूप हैं तथा फल भी उनको ही होता है । स्रुक् आदि जितने भी साधन सामग्री हैं, वे भी श्रीहरि से भिन्न नहीं हैं ॥४३॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के दूसरे अंश के सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७॥